

# ‘वैदिक साहित्य का इतिहास’



→ ‘वैद’, शब्द की प्रमुखता एवं अर्थ  $\Rightarrow$

‘वैद’ शब्द की रूपना ‘विद’ वात में ‘धर्म’ परम्परा के जुड़ने से हुई है,

→ ‘विद’ वात के निम्नानुसार यह इस ग्रन्थ की विषय है।  
यहाँ (i) सत्ताधारक विद वात  $\rightarrow$  जिसके द्वारा किसी वस्तु के अधारी स्वरूप को बताया जाता है वह वैद कहलाता है।

(ii) ज्ञानाधारक विद वात  $\rightarrow$  जिसके द्वारा काम एवं धर्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे वैद कहते हैं।

(iii) विचाराधारक विद वात  $\rightarrow$  जिसके द्वारा ब्रह्म एवं धर्म पर विचार किया जाता है उसे वैद कहते हैं।

(iv) सामाधारक या प्राप्त्यर्थक विद वात  $\rightarrow$  जिसके द्वारा काम की प्राप्ति होती है उसे वैद कहते हैं।

→ ‘वैद’ की परिभाषा  $\rightarrow$

महर्षि दयानन्द शर्मावती ने वैद को परिभाषा की है लिखा है—

“विद्वित / विद्वते / विद्वन्ते सर्वोः सत्यविद्याः येः यत्र वासः वैदः”  
अर्थात् जिनके द्वारा यथा जहाँ पर हमें सभी प्रकार की सत्य विद्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है उसे वैद कहते हैं।

→ वैद के ऐतिहासिकता  $\rightarrow$

‘अपौरुषेय वाक्यं वैदः।’ अत्याधीश सायण के इस कथन के अनुसार वैदों की रूपना किसी पुरुष के द्वारा नहीं की गई है। इसलिए डॉ हानि वैदों को ‘अपौरुषेय’, कहकर पुकारा है।

→ इनके अनुसार वैदिक ज्ञान सर्वप्रथम भगवान् शिव को प्राप्त होता है।

→ शिव ने इपना यह वैद के ज्ञान भगवान् शिवा ‘वैद्युत’ को प्रदान किया था।

- भगवान् ब्रह्माने अपना वैदिक ज्ञान मानवीय गृहियों को पदान किया था।
- आरथि में यह वैदिक ज्ञान मानविक प्रम्परा अनुसार आगे बढ़ता रहा।
- जिन मानवीय गृहियों को यह वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ था उन्हें 'व्यास' के नाम से पुकारा जाता था।
- ऐसे व्यासों की कुल संख्या 28 मानी जाती है।
- इन 28 व्यासों में अन्तिम व्यास 'कृष्ण हेपायन' 'वेदव्याख्य' हुए माने जाते हैं।
- इसी कृष्ण हेपायन वेदव्याख्य के द्वारा सर्वप्रथम समूल वैदिक ज्ञान को चार भागों में विभाजित कर अपने चार शिष्यों को शिकान किया गया। जिनको ही चार संहिताओं के नाम से जाना गया। यथा -

अ.स-	भाग	विषय	सं/प्रा
1.	पश्चम भाग	शैत	शैतवेद
2.	द्वितीय भाग	वैशम्यपायन	यजुर्वेद
3.	तृतीय भाग	जैमिनी	सामवेद
4.	चतुर्थ भाग	सुमनु	अथर्ववेद

नोट → एक बार महर्षि वेदव्याख्य वैशम्यपायन से सुप्त होकर उससे अपना ज्ञान बापस देने के लिए कहा था, तब वैशम्यपायन 'वमन' (उत्तरी) के द्वारा अपने ज्ञान को छारीर से बाहर निकाल दीते हैं। जिससे अन्दर शिष्य 'तितिर' (तीतर) का रूप घासों के बहुणों के जौनों हो उसके बाद वैशम्यपायन फुनः वैद्यव्यस को पश्च तरफ उत्तर से फुनः जान प्राप्त करता है। इस तरह यजुर्वेद को जी दो भागों में विभाजित किया हुआ माना जाता है।

(३)

(i) शुनल यजुर्वेद → वैशापायन का वार्षिकि / मृत्युजान  
 (ii) शूद्रवा यजुर्वेद → तितिरस्पथारी शंख चिह्नों का पाठ जान।

→ एक अन्य मांचता के अनुसार 'आगि', वायु एवं सूर्य देवताओं के द्वारा भगवान् ब्रह्मा को मृत्युप्रसन्न करके उनसे निम्नानुसार वैष्णविकार प्राप्त किया गया।

(i) 'आगि' देवता → यजुर्वेद

(ii) 'वायु' देवता → यजुर्वेद

(iii) 'सूर्य' देवता → सामवेद

नोट → इन तीनों वेदों को ही 'मूल वेद' डावा 'वेदाधी' के नाम से जाना जाता है।

→ आगे चलकर महर्षि अंगिरा 'आगि', वायु एवं सूर्य' इन तीनों देवताओं को प्रसन्न करके उनसे तीनों वेदों के सार-सार भागों को लालौ छिपा। तभा उसका संकलन इन्होंने 'अधिग्रहण' के नाम से कर दिया।

→ वेदों की विकृतियाँ → वैदिक संहिताओं में लिखे हुए मन्त्र अलग-अलग रूपों में प्राप्त होते हैं। इन अलग-अलग रूपों को ही केद की 'विकृति' कहा जाता है। इनकी इकल सरेष्या 'आठ' मानी जाती है। यथा - "जटा माला शिखा रेखा ध्वजो द०३० रथो धनः ००३० विकृतयः प्राकृतः क्रमपूर्वा महर्षिः ॥"

→ वेदों का स्वनाकाल → वेदों के स्वनाकाल के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्वानों के अलग-अलग मत, माने जाते हैं। विविध विद्वानों के अनुसार 'वृहग्रह' का स्वनाकाल निम्नानुसार स्वीकार किया गया है।

यथा →

क्रम.

१. रवांदी दयानन्द सरस्वती → सुलिले के आरंभ से  
 २. डॉ. दीनानाथ शास्त्री कुलचेट → तीन लाख रुपये तक  
 ३. श्री डाकिनाथ चूड़दास → 25000 रु.प.  
 ४. श्री रामकृष्णगोपाल भट्टाचार्य → 8000 रु.प. तक  
     7000 रु.प.
५. हम. विठ्ठलनिळे → 6000 रु.प. से 4500 रु.प.  
 ६. श्री बाल शंखाध्यू तिळक → 6000 रु.प. से 4000 रु.प.  
 ७. डॉ. घाकोवी / जैनोवी → 4500 रु.प. से 2500 रु.प.  
 ८. हॉ. वेबर → 1500 रु.प. से 1200 रु.प.  
 ९. मैकडीनल → 1800 रु.प. से 1000 रु.प.  
 १०. मैकसमुलर → 1200 रु.प. 1000 रु.प.
- (१) → इन सभी मान्यताओं में मैकसमुलर के मर को सर्वाधिक मान्यता दी जाती है। मैकसमुलर ने अपने इस रूपनाकाल को पुनः नियनकृत एवं चार भागों में विभाजित किया है। यथा—
- (i) छन्दस सुगा → 1200 रु.प. से 1000 रु.प. →  
     शहरवेद का रूपनाकाल
- (ii) मन्त्रा सुगा → 1000 रु.प. से 800 रु.प. →  
     प्रैटिक जान कर चार संहिताओं में विभाजित
- (iii) ब्राह्मण सुगा → 800 रु.प. से 600 रु.प. →  
     ब्राह्मण ग्रन्थों, आठवीं शताब्दी ईस्यु की उपनिषदों की रूपना।
- (iv) सूक्ता सुगा → 600 रु.प. से 500 रु.प. →  
     षड्वेदांगा एवं सूक्ता ग्रन्थों की रूपना।

→ पृष्ठ वेदांगा → वेदों में प्राप्त होने वाली

सम्पूर्ण विषय वर्त्तु को नियनकृत एवं 'द्वयः'  
 भागों में विभाजित किया गया है। ये द्वय भागों  
 की पृष्ठ वेदांगा कहलाते हैं—यथा—



1. व्याकरण
2. धून्द
3. ज्योतिष
4. शिक्षा
5. निर्णय
6. क्रमप



- (1) व्याकरण → यह वेद पुरुष के दोनों से संबंधित अंग माना गया है।  
     → इसे वेद पुरुष के 'मुख' अंग के रूप में माना जाता है।  
     → मुख व्याकरण समृद्ध (व्याकरण समृद्ध)
- (2) धून्द → इसे वेद पुरुष के 'पैर' अंग के रूप में माना गया है। (धून्दः पादौ तु वैदस्य)
- (3) ज्योतिष → इसे वेद पुरुष के 'आँख' अंग के रूप में माना गया है। (ज्योतिषामयं चक्षुः)
- (4) शिक्षा → इसे वेद पुरुष के 'नाक' अंग के रूप में माना गया है। (शिक्षा धाठौ तु वैदस्य)



⑤ निरुक्त → इसे वेद पुराण के 'कान' भंग के रूप में माना गया है। (निरुक्त स्थोत्रम् उच्चये )  
→ इसके अन्तर्गत कठिन वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति एवं उनके अर्थ का ज्ञान करना जाता है।

⑥ कल्प → इसे वेद पुराण के 'हात' भंग के रूप में माना गया है। (हातों कल्पयते उच्चये )  
→ इसके अन्तर्गत वैदिक यज्ञों के विधि-विधान का ज्ञान करना जाता है।  
→ कल्प की विषय वस्तु को 'सुग' के नाम से भी जाना जाता है। एवं इसके अन्तर्गत सुग व्यास पुराण के माने गए है। यथा -

(i) स्त्रोत्र सुग → इसके अन्तर्गत बड़े-बड़े वैदिक यज्ञों के विधि-विधान का ज्ञान करना जाता है।

(ii) स्त्राद्य सुग → गृह्ण सुग → इसके अन्तर्गत व्यक्ति घरों में किए जाने वाले द्वाटे - द्वाटे यज्ञों के विधि-विधान का ज्ञान करना जाता है।

(iii) धर्म सुग → इसके अन्तर्गत व्यक्ति जीव समाज के आन्यार-विचार के नियमों का विद्यारण किए गये हैं।

(iv) शुल्व सुग → इसके अन्तर्गत 'यज्ञ वेदी' नाम का ज्ञान करना जाता है।

⇒ वेदों के उपभेद ⇒ चारों वेदों के निम्नानुसार यह उपभेद भी माने जाते हैं -

ऋग्वेद      वेदानाम्

उपवेद

श्लोकवेद → आपुवेद

2.      यजुवेद → ध्यावेद

3.      सामवेद → गंधर्ववेद

अर्थवेद → अर्थवेद / शाल्पवेद

→ वैदिक देवताओं का स्थान निर्धारण → ऋग्वेद में कुल

33 देवताओं की सूत्रिति की गई है, स्थान के आधार पर इन सभी देवताओं को निम्नानुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। यथा -

- (i) द्यु स्थानीय देवता → उसमें प्रमुखतः 'सूर्य, विष्णु, शत्रुघ्नि, सखिता (सवित्र), उषा, अश्विनी, इत्यादि' को शामिल किया गया है।
- (ii) अन्तरिक्ष स्थानीय देवता → इसके अन्तर्गत 'इन्द्र, पूर्णस्य पर्जन्य, मरुत्, सूर्य, वायु, इत्यादि' को शामिल किया गया है।
- (iii) पृथ्वी स्थानीय देवता → इसके अन्तर्गत 'पृथ्वी, आर्द्धन सौम, बृहस्पति, इत्यादि' को शामिल किया जाता है।

⇒ अन्य विशेष तथ्य =

1. "वेदां खिलो धर्ममुलम्" मनुस्मृति के इस कथन के अनुसार सभी वेदों को धर्म का मूल माना गया है।
2. "वेदाद् धर्मो हि निर्बिश्च" याज्ञवल्क्य रस्मृति के इस कथन के अनुसार सभी धर्म वेदों से ही निकली हुए माने जाते हैं।
3. 'बुद्धार्थयोर्पनिषद्' शब्द में समरूप वेदों को 'ईश्वर का निःश्वास' भी वेतनाभ्या गया है।

### 1. 'ऋग्वेद' (ऋक् + वेद)

परिभाषा → "ऋग्यति / रुद्यति देवा शब्द्या इति ऋक्। अर्थात् जिन वैदिक मन्त्रों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता है अथवा देवताओं की सूत्रिति की जाती है। वे मन्त्र 'ऋक्' कहलाते हैं तथा उनके संस्कृत को 'ऋग्वेद' कहा जाता है।

⇒ विभाजन → ऋग्वेद का विभाजन निम्नानुसार हो आये में किस आधार पर किया गया है-

1. मृडल क्रम के आधार पर
2. अष्टक क्रम के आधार पर

1. मृडल क्रम के आधार पर ऋग्वेद का विभाजन →

मंडल → 10

अनुवाक → 85

श्लोकतंत्र → 1028

मंत्र → 10580 1/4

शब्द → 1,53,826

आकार → 4,32,000

2. अष्टक क्रम के आधार पर ऋग्वेद का विभाजन →

अष्टक → 08

अष्ट्याचार → 64

वर्गी → 2024

मंत्र → 10,580 1/4

शब्द → 1,53,826

आकार → 4,32,000

3) शाखाएँ → महर्षि पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की कुल 21 शाखाएँ होने का अनुमान लगाया है परन्तु उनमें से निम्न 5 शाखाएँ ही प्रसिद्ध मानी जाती हैं—

1. शाकल (पूर्ण उपलब्ध शाखा)

2. बालकल (अष्टी उपलब्ध शाखा)

3. ओश्वलाचार्यन (अनुपलब्ध)

4. वांशवाचार्यन ( " )

5. माठुकाचार्यन ( " )

⇒ ज्ञानो/आरोग्यक/उपनिषद् वाचा =>

1. ज्ञानो वाचा → (i) द्वैतरेत ज्ञानो  
(02) (ii) शांखायन या कोषितकी ज्ञानो
2. आरोग्यक वाचा → (i) द्वैतरेत आरोग्यक  
(02) (ii) शांखायन आरोग्यक
3. उपनिषद् वाचा → (i) द्वैतरेतोपनिषद्  
(03) (ii) कोषितकी उपनिषद् (शांखायनी) परिप्रे  
(iii) वात्कलोपनिषद्

⇒ ऋषिवेद की 'शिद्धा' → पाठित शिद्धा

→ ऋषिवेद → द्वैतरेत

→ ऋषिवेद → द्वैतरेत

→ पाठिवेदार्थम् → ऋषिवेद पाठिवेदार्थम्

→ प्रमुख द्वैतरेत → (i) द्वैत (250 सूक्त)  
(ii) आविनि (200 सूक्त)

→ प्रमुख द्वैत → (i) त्रिवक्तुप् (सर्वाधिक प्रमुख द्वैत)  
(ii) गायत्री

→ सर्वप्रथम सूक्त → आविन सूक्त

सर्वप्रथम अंतिम सूक्त → संज्ञान सूक्त

→ कुल ऋषिवेद → 21

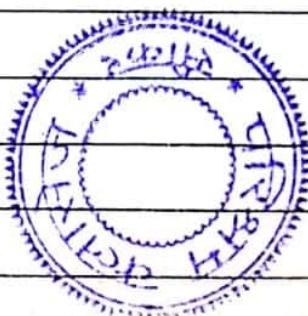
→ प्राप्तिह संवाद सूक्त → मात्रल सूक्त

(i) यम-यमी संवाद → 10/10

(ii) पुरुरवा-डर्वशी संवाद → 10/95

(iii) सरमा-पठि संवाद → 10/108

(iv) विश्वामित्र-नदी संवाद → 8/83



## २. यजुर्वेद (यजुः + वेद)

⇒ परिभाषा → "यजीते यजते वा देवान् अनेन इति यजुः।"  
 अर्थात् जिन मन्त्रों के द्वारा देवताओं के लिए सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन किया जाता है तो  
 'यजुर्वेद' (यजुः) कहलाते हैं। ऐसे उनके समूह को  
 यजुर्वेद कहा जाता है।

⇒ विभाजन ⇒ यजुर्वेद को निम्नानुसार दो भागों में  
 विभाजित किया गया है -

1. शुक्ल यजुर्वेद
2. कृष्ण यजुर्वेद

शाखाएं ⇒ महर्षि पतंजलि के अनुसार यजुर्वेद  
 की १०० शाखाएं होने का अनुभाव लगाया जाता है  
 परन्तु वर्तमान में यजुर्वेद की निम्न छहः शाखाएं  
 ही प्रचलित हैं -

\* शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित शाखाएं → (02)

(i) माध्यन्दिन या वौजसनेयी शाखा

अध्याय → 40

अनुवाक → 303

मंत्र → १९७५

(ii) कौटुम्ब शाखा → अध्याय → 40

अनुवाक → 328

मंत्र → 2086

\* कृष्ण यजुर्वेद से संबंधित शाखाएं → (04)

(i) तैतिरीय शाखा

(ii) मैत्रायणी शाखा

(iii) कठ शाखा

(iv) कणिकाल शाखा

⇒ ब्राह्मण/आरोपक/उपनिषद् गुण ⇒

शून्य

शुत्र यजुर्वेद

कृपा यजुर्वेद

१.

ब्राह्मण शून्य → ईक

(i) शतपथ ब्राह्मण

दो

(ii) तीतिरीय ब्राह्मण

(iii) मैगायणी ब्राह्मण

२.

आरोपक शून्य → ईक

(i) शूत्रदारोपक

दो

(i) तीतिरीय आरोपक

(ii) मैगायणी आरोपक

३.

उपनिषद् शून्य → दो

(i) शूत्रदारोपक यजुर्वेद

संस्कर

(ii) तीतिरीय उपनिषद्

(iii) मैगायणी उपनिषद्

(iv) कृष्ण पुनिषद्

(v) इवेताश्वेतरोपनिषद्

→

शिक्षाएँ → ईक

१. याज्ञवल्क्य शिक्षा

२. बाणिजी शिक्षा

३. माठेय शिक्षा

४. भारद्वाज शिक्षा

५. माध्यानिक शिक्षा

६. अवसान नीय शिक्षा

→ शैक्षिक → अध्यात्म

→ शैक्षिक → वेशम्पायन

⇒ विज्ञाप दृश्य →

१. “गच्छात्मको यजुर्:” अधीत् भृयजुर्वेद का मूल रूप  
गच्छ से जाप्त होता है।

२. शुत्र यजुर्वेद के ४० अध्यायों में से निम्न दो अध्याय विशेष  
परिदृ माने जाते हैं—



- (i) ३४ वाँ अध्याय → शिवसंकल्पशुक्र
- (ii) ४० वाँ अध्याय → द्वेषोपनिषद्

### ३. सामवेद

परिभाषा → “शान्त्यर्थि विद्वान् येन रत्साम्”  
 अर्थात् जिन मन्त्रों के द्वारा वैष्णवि के यज्ञों या कार्यों में सम्बाधित विद्वानों को शान्त करने का प्रयास किया जाता है, वे मन्त्र साम कहलाते हैं लेकिन उनके असूह की सामवेद कहा जाता है।  
 “रीतिषु समाख्या” अर्थात् वीत युक्त वेद ही सामवेद कहलाता है।

विभाजन ⇒ सामवेद के मन्त्रों का विभाजन निम्नुसार दो भागों में किया गया है। यथा —

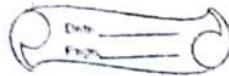
- (i) पूर्वार्थिक → ६५० मन्त्र
  - (ii) उत्तरार्थिक - १२२५ मन्त्र
- 1875 मन्त्र

→ शाखाएँ →

“सहस्रवर्त्य सामवेदः” मध्यि पर्वतान्त्रिक के इस कथन के अनुसार सामवेद की कुल १००० शाखाएँ होने का अनुमान लगाया जाता है उनमें से केवल १३ शाखाओं का ही परिचय प्राप्त होता है उनमें भी वर्तमान में निम्नलिखित ३ शाखाएँ ही उपलब्ध हैं — यथा —

- (i) कौश्यमीय शाखा → यह सामवेद की सबाई की लोकप्रिय शाखा मानी जाती है। यह शाखा वर्तमान में ‘गुजरात’ प्रान्त के विहानों के द्वारा काम में ली जाती है।

Tanishka's Signature.....



- (ii) राजायनीयशास्त्र महावाचक में  
 (iii) जैमिनीयशास्त्रा द्वारा कर्तव्यकु में

⇒ ब्राह्मण/आरोग्यक/उपनिषद् शृङ्खला →

→ ब्राह्मण शृङ्खला → दो (09)

(i) पौड़िया पंचविंश ब्राह्मण

(ii) षड्विंश ब्राह्मण

(iii) सामविद्यान ब्राह्मण

(iv) आर्गेय ब्राह्मण

(v) देवताध्याय ब्राह्मण

(vi) ध्वान्द्वौषध ब्राह्मण

(vii) संहिता ब्राह्मण

(viii) कंश ब्राह्मण

(ix) जैमिनीय या तवत्कार

→ आरोग्यक शृङ्खला → दो (02)

(i) ध्वान्द्वौषध आरोग्यक

(ii) जैमिनीय या तवत्कार आरोग्यक

→ उपनिषद् शृङ्खला → दो (02)

(i) ध्वान्द्वौषध्योपनिषद्

(ii) केनउपनिषद्

→ त्रैष्टिकु → उदगाता

→ त्रैष्टिकु → जैमिनी

→ प्रमुख द्विष्टांत → सूर्य

⇒ ध्वन्य विद्वीष तत्त्वज्ञ →

→ सामवेद से संबंधित दो ध्वन्द्व → (i) गाया (ii) प्रगाढ़ा

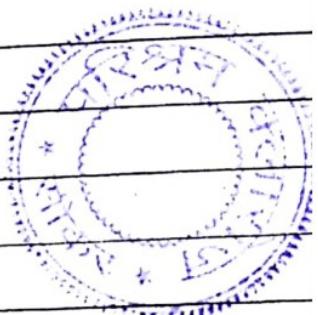
→ सामवेद से संबंधित तीन ध्वन्द्व → (i) मन्दृ (ii) मष्टप (iii) तीव्र

Teacher's Signature.....

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

- सामवेद से संबंधित चार गान →  
 (i) ग्राम (ii) आरुण्य (iii) ऊह (iv) ऊहा
- सामवेद से संबंधित पांच भाग →  
 (i) पूर्णताव (ii) उद्गीषा (iii) प्रतिहार (iv) उपकृत (v) निधन
- सामवेद से संबंधित षट् विकार →  
 (i) विकार (ii) विश्लेषण (iii) विकर्षण  
 (iv) अङ्गासु (v) विराम (vi) स्त्रीभ
- सामवेद से संबंधित सप्त रूपर →  
 (i) वृज (ii) ग्रहणम् (iii) गांधार (iv) मध्यम  
 (v) पंचम (vi) धैवत (vii) निषाद
- सामवेद से संबंधित मूर्खण्डा → 21  
 (तीन ग्राम × सात रूपर)
- सामवेद से संबंधित हान → 49  
 (सात रूपर × एक सात रूपर)



#### 4. 'अथर्ववेद'

- इस वेद को 'वेदशास्त्री' या 'मूल वेदों' में शामिल  
 नहीं किया जाता है।
- इस वेद में तीनों मूल वेदों के जात्र-जात्र को  
 शामिल किया गया है।
- 'आचार्य जयन्त भट्ट द्वारा रचित 'न्यायमंजरी',  
 'शृणु के अनुसार अथर्ववेद को सर्वपुराण वेद  
 नी माना गया है यदा -
- "तत्र वेदाऽन्यत्वाऽः अथर्वो पृथमः ।"
- विभाजन →

अथर्ववेद में कुल 5,987 मंत्र  
 प्राप्त होते हैं जिनको 20 काठों में 731  
 उपकृती में विभाजित किया गया है।

→ शास्त्राणि → "वैद्युतिका वेदः" उपलब्ध अथवा वेद  
 की 09 शास्त्राणि मात्री गात्री है। १०८ -  
 (i) विष्णुक शास्त्रा (ii) रूपोनक शास्त्रा  
 (iii) गोद महागात्रा शास्त्रा (iv) सतोद शास्त्रा  
 (v) जगत् शास्त्रा (vi) जलद शास्त्रा  
 (vii) देवदश शास्त्रा (viii) चारणवेद शास्त्रा  
 (ix) ब्रह्मानन्द शास्त्रा

नोट → इन 09 शास्त्राणों में भी वर्तमान में निम्न 02 वापर्य हैं  
 इनमें उपलब्ध हैं -  
 (i) विष्णुक शास्त्रा (ii) ब्रह्मानन्द शास्त्रा

→ ब्राह्मण शूष्टु → (01) - (i) गोप्या व्याख्या  
 → आरुप्यक शूष्टु → कोई नहीं  
 → उपनिषद् शूष्टु → (03) - (i) पश्चापानिषद्  
 (ii) मुहूर्तकोपनिषद्  
 (iii) मातुक्योपनिषद्

नोट → हमारे राष्ट्रीयितन अशोक स्तम्भ में अंकित "सत्यमवज्ञये"  
 कथन मुहूर्तकोपनिषद् से ही शूष्टा किया गया है

→ गतिविक → वर्त्ता  
 → तत्त्वजि → मुमन्त्र  
 → प्रमुखदेवता स्त्रीम  
 ⇒ अन्य विशेषताएः →  
 → (i) "माता भूमिः पुत्रोऽस्य पुष्टिः०याः" यह स्त्रीके अधर्ववेद में  
 ही प्राप्त होता है, इसके अनुसार 'भूमि' को 'माता' के रूप में  
 माना जाता है।

→ अधर्ववेद 'गद्य' व 'पद्य' दोनों रूपों में प्राप्त होता है।  
 → इसका  $\frac{1}{6}$  भाग 'गद्य' रूप में तथा  $\frac{5}{6}$  भाग 'पद्य' रूप में लिखा गया है।  
 → अधर्ववेद को निम्नलिखित अन्य तात्त्वों से भी जाना जाता है -  
 (i) ब्रह्मवेद (ii) स्तुत्ववेद (iii) भैषज्यप वेद (iv) महीवेद (v) क्षत्रिवेद  
 (vi) ऊर्गिरस वेद (vii) चूर्वगिरा वेद

Teacher's Signature.....

# पाद्यक्रमानुसार निर्धारित वैदिक सूक्त

## 1. "पुरुष सूक्त"

वेद	$\rightarrow$ प्रश्नवेद
म०३८ क्रमांक	$\rightarrow$ दृष्टम् (१०वाँ)
सूक्त क्रमांक	$\rightarrow$ ७०वाँ सूक्त (नवतितम् शृङ्खल)
देवता	$\rightarrow$ विराट् पुरुष महानारायण
ब्रह्मि	$\rightarrow$ नारायण
कुल मन्त्र	$\rightarrow$ १६ (षोडश)
प्रमुख शृङ्खल	$\rightarrow$ (i) अनुष्ठुप् (११ से १५ तक) (ii) विष्टुप् (अंतिम १६वाँ मन्त्र)

$\Rightarrow$  अन्य विशेष तथ्य =

1. इस सूक्त में ब्रह्मि नारायण के देवता कुल १६ मन्त्रों में विराट् पुरुष महानारायण की सूत्रिकी गई है।

2. इस सूक्त में सभूति सूत्री, समस्त चराचर जगत्, समस्त देवताओं, वेदों, अनुष्ठों, जानवरों, नगरों, इत्यादि की उत्पत्ति विराट् पुरुष महानारायण से ही मानी गयी है।

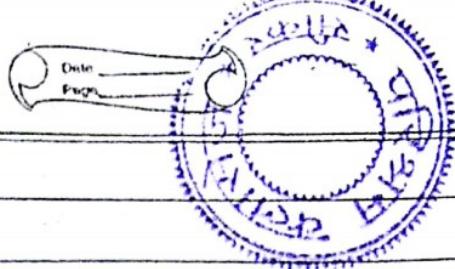
3. भारतीय संस्कृति में उत्तर एवं वर्ण व्यवस्था का सर्व प्रथम क्रमबद्ध विवेचन इसी सूक्त में प्राप्त होता है। इस सूक्त में चारों वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के निम्न छाँगों से मानी गई है -

- (i) ब्राह्मण  $\rightarrow$  मुख से (मुखम्)
- (ii) क्षत्रिय  $\rightarrow$  भूजाओं से (बाहूभ्याम्)
- (iii) वैश्य  $\rightarrow$  जंघाओं से (इलूभ्याम्)
- (iv) शूद्र  $\rightarrow$  पैरों से (पदभ्याम्)

4. इस सूक्त में यह बताया गया है कि विराट् पुरुष की उत्पत्ति के लिए एक सर्वानुत यज्ञ (मानस यज्ञ) का आयोजन किया गया था। इस यज्ञ में निम्नानुसार इधन-आदि का प्रयोग किया गया था। यथा -

- (i) वसन्त ब्रह्म  $\rightarrow$  आज्यम् (घृत)
- (ii) शूद्र ब्रह्म  $\rightarrow$  दृष्टमः (ईधन)
- (iii) शरद ब्रह्म  $\rightarrow$  हवि (आहृति)

Teacher's Signature.....



(iv) परिविद्यां → सप्त (सात)

(v) समिधाएं → एकविंशति / ग्रीसप्त (21)

5. इस सूक्त में विविध देवताओं की उत्पत्ति ही विराट् पुरुष -  
महानारायण के विविध अंगों से मानी गई है। यथा -
- (i) अग्नि → मुखात् (मुख से)
  - (ii) इन्द्र → मुखात् (मुख से)
  - (iii) वायु → प्राणाद् (प्राणी से)
  - (iv) सूर्य → चक्षोः (आँख से)
  - (v) चन्द्रमा → मनसः (मन से)

6. इस सूक्त में तीन लोकों एवं दसों दिशाओं की उत्पत्ति ही  
विराट् पुरुष महानारायण के निम्न अंगों से हुई मानी गयी है -
- (i) द्यु लोक → सिर से (शीर्षम्)
  - (ii) अंतरिक्ष लोक → नाभि से (नाभ्याद्)
  - (iii) भूलोक/पृथी लोक → पैरों से (पद्म्याम्)
  - (iv) इस दिशाएं → कान से (अोक्तात्)

7. महान् मनोवैज्ञानिक 'हरवर्ति स्पैन्सर' द्वारा प्रतिपादित -  
'जीवीय उत्पत्ति सिद्धान्त' इसी सूक्त से गहरा किया गया  
माना जाता है।

8. पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्ममानववाद' का  
सिद्धान्त भी इसी सूक्त के आधार पर प्रतिपादित माना जाता है।

9. 'मैकड़ौनल' एवं 'वालिस' मटोइप द्वारा प्रतिपादित -  
'सर्वेश्वरवाद' का सिद्धान्त भी इसी सूक्त से गहरा किया गया है।

10. महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 'अग्निभगवतगीता' के 11वें  
उपाध्याय में भगवान् कृष्ण का जीविराट् स्वप्न दर्शाया गया है।  
यह भी इसी सूक्त पर आधारित माना जाता है।

11. इस सूक्त में एक ही देवता/परम ब्रह्म परमेश्वर की उपासना  
की गई है, जिसके कारण इस सूक्त की सबसे अर्द्धांश  
सूक्त भी माना जाता है।



1. “ॐ सहस्राणि पुरुषः सत्त्वाणः सत्त्वाणात् ।  
स शुभं विश्वतो वृत्तवात्यतिरूपद्वया द्वयम् ॥”  
→ प्रस्तुत मन्त्र में विराट् पुरुष मत्तनारायण के स्वरूप का वर्णन करते हुए अधिनारायण कहते हैं कि वह विराट् पुरुष हजारों सिरों वाला है, हजारों ओंखों वाला है, एवं हजारों पीरों वाला है, वह इस समूह में शास्त्राणि को व्याप्त करके सभी के हृदय पुरा में समाचा हुआ है।

३८ + ५६

2. “पुरुष एवेदं सर्वं यदमूर्तं यज्ञयभाव्यम् ।  
अतामृतत्वस्येशानो यहन्नेनातिरोहति ॥”  
(उत् + अमृतत्वस्य + ईशानः) (यत् + अन्नेन + आतिरोहति)  
→ प्रस्तुत मन्त्र में ही विराट् पुरुष की व्यापकता का वर्णन करते हुए अधिनारायण कहते हैं कि जो वर्तमान जगत् है, वह विराट् पुरुष है, स्वरूप ही है जो मुरलीदार धा वह जी उसी का स्वरूप धा तथा जी भावित्यरूप है वह जगत् होगा, वह जी उसी का स्वरूप होगा।  
कहने का तत्पर्य यह है कि वर्तमान काल, मृत्युकाल एवं भवित्यतकाल इन तीनों कालों में वह विराट् पुरुष ही समाचा हुआ है।  
वह विराट् पुरुष सभी अमृतरुपी पदार्थों का स्वामी है तथा वह अन्न आदि के द्वारा वृष्टि को पाप्त करता है।  
(ज्याधानुष्ठ)

3. “एतावानरूपं महिमाच्यायाश्च पुरुषः ।  
पादोऽस्य विश्वा भुग्निं विपादयामृतं विहीनः ॥”  
→ प्रस्तुत मन्त्र में ही विराट् पुरुष मत्तनारायण की व्यापकता का वर्णन करते हुए अधिनारायण कहते हैं कि उस विराट् पुरुष की इतनी अद्वितीय महिमा है कि इस सम्पूर्ण घटक लोक में नी

आश्रव विद्याम् के समरूप पदार्थों में तो उसका एक ~~अ~~ है।  
परन मात्र (अंश मात्र) समाचा हुआ है। उसक शोष  
तीन चरण या अंशों तो असूत्रसम्पर्क द्वारा लोक में पैले  
हुए हैं।

(विपात + उच्च) (उत + ऐत) (पदः + मरम् + इट + अभवत)

4. “ विपादुद्धृते उद्देत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।  
ततो विष्वद् व्यक्तामत् साशनानशनः ॥ ”

(स + अशन + अनशने + अभि)

पुरुष मन्त्र में भी सज्जोव - निजीव सभी पदार्थों में विराट्  
पुरुष का समावेश मानिते हुए क्षमिता नारायण कहते हैं कि आप  
तीन चरणों से वह विराट् पुरुष ऊपर की ओर अर्धात् द्यु  
लोक की ओर चला गया है तथा उसका एक चरण मात्र  
से इस पूर्वी लोक पर बार - बार घटित होता रहता है।  
विविध रूपों वाला वह विराट् पुरुष ही भी जन करने वाले  
सभी सज्जोव पदार्थों में एवं भोजन नहीं करने वाले सभी  
निजीव पदार्थों में समाप्त हुआ है।

5. “ तस्माद् विराजायत् विराजोऽधिपुरुषः ॥ (जीवात्मा) ।

स जातो अत्यरिच्यत् पश्याद्भूमिभ्यापुरुषः ॥ ”

→ सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए क्षमिता नारायण कहते  
हैं कि सूर्य की उत्पत्ति के लिए 'ब्रह्मा, विष्णु व महेश'  
इन तीन देवताओं के द्वारा एक 'सर्वद्वृत यज्ञ' (मानस यज्ञ)  
का आयोजन किया गया था। उस यज्ञ से सर्वप्रथम  
विराट् उत्पन्न हुआ। उस विराट् से 'अधिपुरुष' (जीवात्मा)  
उत्पन्न हुआ। वह आधपुरुष या जीवात्मा उत्पन्न होते ही  
उच्चस उच्चर सब जगत् के ल गया। उसके बाद पूर्वी  
लोक की स्थन। हुई तथा। उसके बाद शरीरों या नगरों  
की स्थन। की गई।

6. "यत्पुरुषो हविषा देवा यजमानवत् ।  
वसन्तैरुद्यासीदाज्यो शीतम् इधमः शरद्विः ॥"

(शरद + द्विः) ओहिष्मा

→ आप सुषिट्ठि या विराट् पुरुष की उत्पत्ति के लिए  
तीनों देवताओं के द्वारा जिस मानस यज्ञ का  
आयोजन किया गया था उस यज्ञ में वसन्त  
ऋग्म ने चूर्ण(आज्यम्) के रूप में, शीतम् ऋग्म  
की इध्यन(इधमः) के रूप में रथा शरद् वेष्टु  
को छवि (छवन् सामग्री) के रूप में कार्यपूर्त किया  
गया था ।

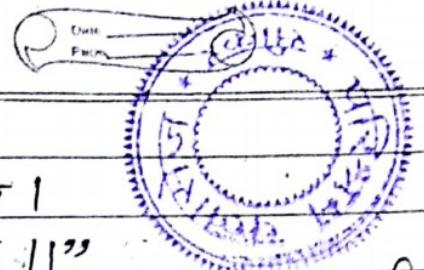
7. "तं यज्ञं बहिष्मि प्रोक्षन् पुरुषं जातमभृतः ।  
तेन देवा अयजन्त साध्याः शृण्यश्च ये ॥"

→ प्रस्तुत मन्त्र में ही सुषिट्ठि की उत्पत्ति की प्रक्रिया का  
वर्णन करते हुए कहा जा रहा कहते हुए कि उस  
मानस यज्ञ से जो विराट् पुरुष स्वरूपे पहली उत्पत्ति  
हुआ था उसे सर्वप्रथम् शुद्ध या पवित्र जप्तु से वा  
स्नान कुरवाया गया था । तृष्ण्यात् उसी ने देवताओं  
सिद्ध पुरुषो वृष्टिपूर्ण यो को बनाया

8. "तर्हमादेवोपसेन्दुतः समृतं पृष्ठद्वाज्यम् ।

- पशुन्तोऽपि वायव्या नारूद्यान्मांश्याश्च ॥"

→ शृण्यि नारायण आगे कहते हुए कि सब कुछ औंक दिया गया था  
जिसमें, उस सर्वद्वृत यज्ञ से सर्वप्रथम् देहीमिकृत यी को प्राप्त  
किया गया । उसके पश्चात् उस यज्ञ से ही सभी प्रकार के  
पशु क्रमानुसार बनाये गए । सर्वप्रथम् वायु में विषरण करने  
वाले पशु अर्धात् पली, तदुपरान्त शौर, चीता आदि जंगली  
जानवरों ल्यम् उसके पश्चात् गाँवों में पाले जाने वाले पशुओं  
की रूपना की गई ।



9. “तस्माद्यत्सर्वदुर्ग्रहयः स्नानानि यज्ञिरे ।

‘धूम्हारिण यज्ञिरे तस्माद्यजुर्स्तस्माद्यजायत् ॥’

→ प्रस्तुत मंत्र में तीनों मूल वेदों एवं धूतद शास्त्र की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्मणि नारायण कहते हैं कि देवताओं द्वारा आयोजित उस सर्वदुर्ग्रहय यज्ञ से ही ब्रह्मवेद, सामवेद व यजुर्वेद उत्पन्न हुए तथा उस सर्वदुर्ग्रहय का से ही धूम्ह शास्त्र उत्पन्न हुआ ।

10. “तस्मादश्वा अजायन्त चे के चोभग्राहन्तः ।

‘गावो ह यज्ञिरे तस्मात्स्माज्जातो अजाययः ॥’

→ ब्रह्मणि नारायण आगे कहते हैं कि देवताओं द्वारा आयोजित उस सर्वदुर्ग्रहय यज्ञ से ही घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके ऊपर नीचे दोनों तरफ हाँत हैं, वे जानवर भी उसी यज्ञ से उत्पन्न हुए, गायें भी उसी यज्ञ से उत्पन्न हुई तथा भैड़-बकरियाँ भी उसी यज्ञ के उत्पन्न हुए हैं।

11. “यत्पुरुषं व्यदधुः कतिथा व्यक्त्यन् ।

मुख किमस्यासीति बाहु किमुकु पाद्य उत्येति ॥”

किमस्य की बाहु का उल्लङ्घन

→ ब्रह्मणि नारायण के द्वारा विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन किया जाता है, पर प्रस्तुत मंत्र में अन्य ब्रह्मिणों उनसे प्रश्न कर रहे हैं कि हैं अस्तिवर। जिस विराट् पुरुष की आप अनेक प्रकार से कल्पनाएं कर रहे हैं तो हमें बताएं कि उस विराट् पुरुष का मुख क्या था, मुझाएं क्या थीं, जँघाएं क्या थीं दोनों पैर क्या थे?

12. “ब्राह्मणोऽरुपं मुखमारतीद् बाहु राजन्यः कृतः ।

उठतदस्य यदवेष्यः पदव्यां शुद्धोऽजायत् ॥”

→ प्रस्तुत मंत्र में चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्मणि नारायण कहते हैं कि ब्राह्मण उस विराट् पुरुष के मुख से, स्त्रिय मुजाओं से, वैश्य जंघाओं से तथा शूद्र वर्ण उसके दोनों खेदों से उत्पन्न हुआ था।



13. “चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षेऽः सुर्यो अजायत ।  
मुखाद्वि न्द्रेश्चाविनश्य पाणा देवायुरजायत ॥”  
→ प्रस्तुत मंत्र में विविध देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्मि नारायण कहते हैं कि चन्द्रमा विराट पुरुष महानारायण के मन से उत्पन्न हुआ, सुर्य उसकी आँखों से उत्पन्न हुआ, इन्हें और अग्नि उसके मुख से उत्पन्न हुए रथा वायु देवता उसके पाठों से उत्पन्न हुआ ।
14. “नारद्या आसीदन्तरिक्षे शीठोऽद्योः समवर्तते ।  
पदम्यां भूमिदिक्षाः च्यान्नात्या लोकां अकल्पयन् ॥”  
→ प्रस्तुत मंत्र में तीनों लोकों एवं द्वासां दिक्षाओं की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्मि नारायण कहते हैं कि अकल्परिक्षा लोक विराट पुरुष महानारायण द्वारा जाग्नि से उत्पन्न हुआ, द्युलोक उसके स्त्रियों से उत्पन्न हुआ, पृथ्वी लोक उसके पैरों से उत्पन्न हुआ, दसां दिक्षाएँ उसके कानों से उत्पन्न हुई रथा इसी उकाड़ अथ ऐकों कीकल्पना (रचना) करती गई ।
15. “सप्तास्थासनं परिघयस् व्रिः सप्त समिद्यः कुलाः ।  
देवा यद्यत्त तेष्वाना अल्पनन् पुरुषं पश्यम् ॥”  
→ ब्रह्मि नारायण आगे कहते हैं कि उस विराट पुरुषरूपी पश्यते वाधने के लिए अधीत् नियंगांश में कर्त्तव्य के लिए देवताओं के द्वारा जिस सर्वहुत यज्ञ का आयोजन किया गया था, इस यज्ञ की सात परिधियाँ सबम् इसकी समिधाएँ थीं ।
- नोट → (i) ऋग्वेद में प्रमुकत होने वाले गायत्री, उषिका और सात हृष्णों को ही यह सात परिधियों के रूप में माना गया है ।  
(ii) इनकी समिधाओं के रूप में निम्नलिखित प्रकार के मत प्राप्त होते हैं →



- (क) द्वान्द की पृष्ठम पाँच जातियों को होड़कर को छ सभी इन्हींस जातियों  
 (ख) बारह महीने + पाँच श्रृंग + तीन लीँक + एक सूर्य (मन) = 21  
 (ग) पुरुष सुकृत के पृष्ठम में से लेकर इस 25वें मंत्र तक  
 - अनुष्टुप् द्वान्द का प्रयोग हुआ है।

16. “ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास् तावि धर्माति प्रथमान्यस्त्रु ।  
 तेऽनां भूमिमानः स्थपन्तः यज्ञ शूर्वे साध्याः सान्ति देवाः ॥ ”

→ पुरुष सुकृत के इस अन्तिम मंत्र में ब्रह्मिं नारायण अपने लिए एवं  
 अन्य ब्रह्मियों के लिए रूपर्गलीक प्राप्ति की कामना करते हुए  
 कहते हैं कि देवताओं के द्वारा स्वाधित की उत्पत्ति के लिए जिस  
 सर्वद्वृत (मानस) यज्ञ का आयोजन किया गया था, उस यज्ञ  
 में सर्वपथम धर्मांचरण सम्बन्धी नियम बनाये थे।

अन्त में विराट पुरुष महानारायण से ओशीविदि मांगते हुए अद्वितीय  
 नारायण कहते हैं कि जिस रूपर्गलीक में पहले से ही सिद्ध पुरुष  
 एवं देवता निवास करते हैं, भूमि से युक्त उस स्वर्ग लीक  
 को हम सब ब्रह्मियों भी प्राप्त हो जावे।

नोट: → पुरुष सुकृत के इस अन्तिम मंत्र में ‘ ग्रिष्टुप् ’ द्वान्द  
 का प्रयोग हुआ है।

[www.missiongovtexam.com](http://www.missiongovtexam.com)



## 2. "इन्द्र सूक्त"

101



वेद	→ श्रद्धवेद
मंडल	→ द्वितीय
सूक्त क्रमांक	→ 12 वाँ
शृणि	→ गृहसमद
देवता	→ इन्द्र
कुल मंत्र	→ 15 (पन्द्रह)
खन्द	→ त्रिष्टुप्

### अन्य विशेष तथ्य →

(i) इस सूक्त में शृणि गृहसमद अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए कुल पन्द्रह मंत्रों में 'इन्द्र' की रक्षा करते हैं।

(ii) आत्मरक्षा के अनुसार इस सूक्त का कथानक निम्नानुसार प्राप्त होता है -

‘एक बार शृणि गृहसमद के द्वारा यज्ञ का आयोजन किया गया था, जिसमें इन्द्र सहित सभी देवता ओष्ठे हुए थे। उसी समय इन्द्र के दो शत्रुराक्षस ‘धुनि’ व ‘चुमुरि’ भी इन्द्र को मारने के लिए यज्ञ द्वारा पर पहुँच जाते हैं। तब उन राक्षसों से बचने के लिए इन्द्र शृणि गृहसमद का रूप धारण करके वहाँ से निकल जाते हैं। सभी उच्चले जाने के बाद ये दोनों राक्षस वाहतविक शृणि गृहसमद को ही इन्द्र समझकर मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। तब अपने प्राण बचाने के लिए शृणि गृहसमद इन्द्र की विशेषताओं का विनाश करते हुए उन राक्षसों को समझाते हैं कि हे राक्षसों! इस प्रकार की विशेषताओं वाला वह इन्द्र है।

(iii) इस सूक्त के पृथम-चौथे मंत्रों के अन्त में 'सजनास इन्द्र' कथन का प्रयोग किया गया है, यह इसूक्त 'जनास' राहदराक्षसों के लिए प्रभुकत हुआ है। यह पृथम 'विभान्ति बहुविन वा पढ़ साना जाता है।

(iv) इन्द्र श्रद्धवेद का स्वरूप एमुख देवता माना गया है। श्रद्धवेद

के कुल 1028 सूक्तों में से लगभग 250 सूक्त इन्द्र की स्तुति में लिखे गये हैं।

(v) आरम्भ में इन्द्र को 'विद्युत' का देवता माना जाता था, परन्तु वर्तमान में वह 'वषा' व 'युद्ध' का देवता माना जाता है।

(vi) ऋग्वेद में इन्द्र का वंश परिचय निम्नानुसार प्राप्त होता है -  
'द्यौ' → पिता

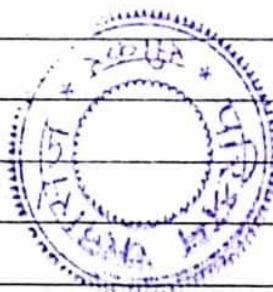
'अग्नि' व 'पुषा' → संजो भाई

'वाची' (इन्द्री) → पत्नी

'मस्तव्या॒०१' → सहायक/मित्र

(vii) ऋग्वेद में इन्द्र को देवताओं का राजा एवं राक्षसों का शत्रु भी माना गया है। वह वज्र नामक आमुद (हथियार) से राक्षसों का संहर करता है।

### मंत्र



1. "यो जात एव पृथमो मनस्वान्  
देवा देवान्कुतुना पर्यनुष्टत ।  
यस्य शुष्मादोदसी अभ्यस्ता,

वृमणरथ महान् स जनास्त इन्द्रः ॥"

→ युनि व युमुरि राक्षसों को सम्बोधित करते हुए इन्द्रीषि गृत्समद कहते हैं कि जो उत्पन्न होते ही सबसे पहले मनस्वी हो गया था, जिसने अपने नित्य कर्म से देवताओं को अभी अलंकृत कर दिया था, जिसके शारीरिक बल के भय से युलोंक और पृथ्वी लोक भी काँपने लग जाते हैं तथा जो महान् या बहुत बड़ी सेना से युक्त है, हे राक्षसों! ऐसी विशेषताओं वाला वह इन्द्र है।

2. "य पृथिवीं व्यथमानामदुःहृद्,  
यः प्रकुपितां पर्वतान् अरसात् ।

Student's Signature.....



यो अन्तरेक्षं विममे वरियो,

यो द्यामस्तुभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥”

→ अधिष्ठि गृहसमद् आगे कहते हैं कि जिसने इस हिलती हुलती या काँपती हुई पृथ्वी को रखिए कर दिया था, जिसने कोष्ठ से मुक्त पर्वतों को भी रोक लियाशा या अचल बना दियाथा, जिसने इस विशाल अतरेक्ष लोक की रथना की भी रथा। जिसने घुलोक के विस्तर को भी रोक लिया था। हे राक्षसो! इस प्रकार की विशेषताओं वाला वह इन्द्र है।

3. “यो हत्वाहि भरिणात्सप्तसिंहून्,

यो रा उदाजदप्था बलरूप ।

यो अश्मने रव्न्तर भिन जगान्,

संबृक्षमत्सु से जनास इन्द्रः ॥”

→ अधिष्ठि गृहसमद् आगे कहते हैं कि जिसने ‘अहि’ (वृत्तासुर) नामक राक्षस को मारकर सात प्रकार की नदियों को बहाया था, जिसने बल नामक राक्षस के बोडे से (अधिकास्त) गायों को मुक्त करवाया था, जिसने पत्थरों के बीच खेल अभिन को उत्पन्न किया था, तथा जो घुटद्वारों में भ्रयकर मार-काट मर्याने वाला है। हे राक्षसो! इस प्रकार की विशेषताओं वाला वह इन्द्र है।

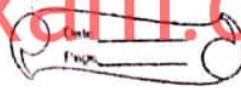
4. “यनेभा विश्वा च्यवना कुतानि,

यो दासं वर्तमधरं गुहाकः।

इवध्वनीव यो जिग्नीवाल्लभमाद्,

अर्थः पुष्ट्यनि स जनास इन्द्रः ॥”

→ अधिष्ठि गृहसमद् आगे कहते हैं कि जिसने इस समर्त नश्वर या नाशशीलं पदाधों की भी रिक्ष



कर दिया था, जिसने दास वर्ष के लोगों को (राक्षसों को) शुफाओं में डाल दिया था, जिसने एक जुधारी की तरह अपने शत्रुओं की सम्पत्तियों को जीत लिया था तथा जिसने अपने लक्ष्य को पाप्त कर लिया था। हे राक्षसों ! ऐसी - विशेषताओं वाला वह इन्ह हैं।

5. “यं स्मा पृच्छन्ति कुरु स्तुति धोरम्  
उत्तेभाषु अस्तीर्थ्येनम् ।  
सो अर्थः पुष्टीविजु इवामिनाति,  
अद्वयम् धन्त र्यजनाल इन्दः ॥”

→ अद्वय वृत्तसम्बद्ध आगे कहते हैं कि जिस धोरभयकर के बारे में यह पूछा जाता है कि वह कहाँ पर है, जिसके सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि वह है अथवा नहीं है, जो शत्रुओं की सम्पत्तियों को एक विजेता को तरह छीन लेता है तथा जिसके पाति सभी अद्वा-भाव रखते हैं। हे राक्षसों ! ऐसी विशेषताओं वाला वह इन्ह हैं।

6. “यो रथरूप चोदिता यो कुशरूप,  
यो ब्रह्मा नाधमानरूप कीरेः ।  
युवतग्राणो योऽविता लुशिप्रः,  
सुतसोमरूप स जनाल इन्दः ॥”

→ प्रस्तुत मंत्र में इन्ह को प्रेरक व रक्षक मानते हुए



नेहरिये शूलसमूद कहते हैं कि जो समझिराली लोगों को प्रेरित करने वाला है, जो याचना करने वाले एवं स्थुति करने वाले बाधणों को प्रेरित करने वाला है, जो सोमलग को लाने वालों एवम् उसको सिलबटटे पर पिसने वाले लोगों की रक्षा करने वाला है तथा जो खुन्दर डोडी वाला है, है राक्षसा। इस प्रकार की विशेषताओं वाला वह इन्ह है।

[www.missiongovtexam.com](http://www.missiongovtexam.com)

7. “ यद्यपि इवासः प्रदिवा यस्य शावी,  
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।  
यः सुर्य य उषसं जजान्,

यो अपां नैता स जनास्य इन्दः ॥”

→ इन्द की विशेषताओं का वर्णन करते हुए ऋषि गृहसमृद्ध आगे कहते हैं कि जिसके निचेंगठ में या अनुशासन में रहकर सभी घोड़े, सभी गायें, सभी गांव एवं सभी रथ संचालित होते हैं। जिसन सुर्य एवम् उषा को उत्पन्न किया हु तथा जो जल को लाने वाला है, ने रात्रियों ! इस प्रकार के विशेषताओं वाला वह इन्द है।

8. “ यं कन्तसी संयती विहवयेत्,

पवरेऽप्वरं उभया अमितः ।

समानं चिद्रथमात्रमित्वांसा,

नाना हवेत् स जनास्य इन्दः ॥”

→ ऋषि गृहसमृद्ध आगे कहते हैं कि युद्ध भूमि में शीर करती हुए ही सेनाएँ आपस में मिलकर जिसकी लुलाती है। उत्तम एवम् अधम दोनों प्रकार के सौभार्य जिसको बुलाते हैं, इन्द के समान आकर वाले रथ पर बैठ हुए योद्धा भी इनके प्रकार से जिसको लुलाते हैं। ने रात्रियों ! ऐसी विशेषताओं वाला वह इन्द है।

9. “ यस्मात् ऋते विजयन्ते जनास्ते,

(सूर्यमात्र + न)

यं युद्धमाना अवस्ते हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बश्व,

यो अत्युत्त्युत स जनास्य इन्दः ॥”

→ इन्द की विशेषताओं का वर्णन करते हुए ऋषि गृहसमृद्ध आगे कहते हैं कि जिसके बिना लोग विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं। युद्ध करते हुए योद्धा भी अपनी रक्षा के लिए जिसकी

Teacher's Signature.....

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

ज्ञाते हैं। जो समर्पित विश्व का प्रतीक राष्ट्र है। ३०५  
 अति के रूप जो भवितव्य होता है। प्रतीक विश्व के  
 नी विश्विता बना देता है। हे राष्ट्र! ॥ ३०६ ॥  
 हे राष्ट्र है।

10. “ यः शाश्वतो महीनो देहाऽनाम्,  
 अमान्यु इमान्यमानाऽद्वयं जग्दान् ।  
 यः शाश्वते नानुद्दिति शुद्धयां,  
 -यो देह-शोहृता स जनास इन्द्रः ॥ ”

→ प्रथम श्लोक आगे कहते हैं कि जो अनेक प्रकार के  
 छेद-छेद पाप कर्म करने वाले लोगों के रूप उन्हीं नहीं  
 मानने वाले लोगों की अपने वज्र से मार डालता है।  
 जो हिंसा कर्म करने वाले लोगों के हिंसक करने की  
 सहन नहीं कर पाता है रूप जो राक्षसों के मारने  
 वाला है। हे राक्षसों। ऐसी विशेषताओं वाला वह  
 इन्द्र है।

11. “ यः शम्वरं पर्वतेषु द्विधानं,  
 चत्वारिंश्यां शरध्य०८विन्दत् ।  
 ओजायमानं यो आहं जघान्,  
 दानुं द्राघानं स जनास इन्द्रः ॥ ”

→ जिसने पर्वतों में द्विधे हुए शम्वर नामक राक्षस को  
 द्वालीस वें वर्ष में खोजकर मार डाला था। जिसने अपने  
 ओज या बल का प्रदर्शन करते हुए हनु के पुज आहे  
 (हनुसर) नामक राक्षस को लोटे हुए की मार डाला था।  
 हे राक्षसों। ऐसी विशेषताओं वाला वह इन्द्र है।

12. “ यः सप्तराषिमवृषभस्तुवित्मान्,  
 अवास्त्रजन्त्सत्वे सप्तस्त्रियून् ।

यो रोहिणमस्तुरद्वं वज्रवाहुः,

द्यामराहन्ते स जनास्तु इत्यः ॥”

→ इष्टिषि गृहसमद् आगे कहते हैं जो सात प्रकार के मेघों (लोकों) पर नियंत्रण करने वाला है, जो वर्षा को लाने वाला है, जो अत्यधिक शारितशाली है, जिसने सात प्रकार की नदियों को रहने के लिए मुक्त करवाया है या दाह्या जिसकी मुजाहिं वज्र के जैसी है तथा जिसने द्यु लोकों पर आरोहा (न्येदते) करते हुए रोहिणामक राक्षसों को मार डाला था। हे राक्षसों! ऐसी विशेषताओं वाला वह इत्यः ॥

13. “ द्यावा चिह्नम् पुष्पिभि नमेते,

शुद्धमाप्तिपदस्य पर्वता भयन्ते ।

यः सोमपा नियितो वज्रवाहुः :

यो वज्रहस्तः स जनास्तु इत्यः ॥”

→ इष्टिषि गृहसमद् आगे कहते हैं कि जिसके लिए द्यु लोकों द्वारा पूर्णी लोक भी नीचे सुक खाते हैं। जिसके शारीरिक बल के भय से पर्वत भी उरने लग जाते हैं, जो सीम रस का पान करने वाला है, जो कठोर या दुष्ट भंगों वाला है जिसकी मुजाहिं वज्र के जैसी कठोर है तथा जिसने अपने हाथों में वज्र की धारणा कर रखा है हे राक्षसों! ऐसी विशेषताओं वाला वह इत्यः ॥

14. “ यः सुन्ततमवति यः पञ्चन्तं,

यः शंसन्तं यः शशमानभृती ।

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो

यस्येदं राध्यः स जनास्तु इत्यः ॥”

→ इष्टिषि गृहसमद् आगे कहते हैं कि जो सीम रस निकालने वाले लोगों की रक्षा करता है, जो हमि पक्षीने वाले लोगों की

Teacher's Signature.....

रक्षा करते हैं, जो स्तुति या प्रशंसन करने वाले लोगों<sup>ों</sup> की रक्षा करता है, जो अपनी रक्षा के लिए स्तोष (स्तुतिमंड) पढ़ने वाले लोगों की रक्षा करता है। जो सके कारण से बहु आदि मंग, सोमलता एवं इन सभी प्रकार के अन्न वृद्धि का प्राप्त करते हैं। हेसी विशेषताओं वाला वह इन्हैं है।

15. “यः सुन्वते पचते दुष्ट आचिद् ॥

वाजं दद्धिं स किञ्चित् सत्यः ।

वये त इन्द्रः विश्वह प्रियासः ॥

सुवीरासो विद्धिमा वदेम ॥ ॥”

→ क्रांति गृहसमद के द्वारा इन्द्र की स्तुति किये जाने पर इन्द्र सेना सहित गृहसमद शहिषि के आश्रम में आते हैं तथा ‘धुनि’ व ‘चुमुरि’ दोनों राक्षसों का वध कर देते हैं। तब अपने समक्ष इन्द्र को देखकर उस्तुत मंग में कहां शहिषि गृहसमद अपने लिए एवम् अन्य शहिषि गाठों के लिए आशीर्वाद की क्रामना करते हुए कहते हैं कि जो अत्यधिक मंयंकर माना जाता है, वह इन्द्र सीम रख निकलौने वाले लोगों को तथा हवि पकाने वाले लोगों को अन् बल आदि पुदान करता है, उसका भट्ट नाम शेषियत रूप से सत्य सिद्ध हो जावे।

है इन्द्र । हम रम्य शहिषिगाठ शदैव आपके ऐप बने हैं, अपक पुठों आदि से युक्त हो जावे तथा सदैव सत्यता पूर्ण वयन लोली हैं । ऐसा आशीर्वाद आप हमें पदान कर ।

### 3. 'आर्द्ध शून्यता'

110



वेद	→ वेदवेद
मंडल क्रमांक	→ प्रथम
शून्यता क्रमांक	→ प्रथम
शून्यिता	→ विवरामिता / नियन्त्रिता
देवता	→ आर्द्ध
गण	→ OG
स्त्री	→ गार्डी

#### अ०च विशेष लक्ष्य

- वेदवेद के 33 देवताओं में आर्द्ध को ३०५ के बाहर छुपा।
- प्रमुख देवता माना जाता है।
- आर्द्ध की स्तुति में लिंगमण २०० शून्यता लिखी गई है।
- पृथ्वी रसायनिक देवताओं में आर्द्ध को संबंधित देवता माना जाता है।
- आर्द्ध देवता को अ०च रसायनिक देवताओं का 'प्रमुख' भी कहा जाता है।
- 'आर्द्ध' शब्द मूलतः 'भारोपीय' 'भाषा परिवार का शब्द' माना जाता है। इसके लिए विशेष भाषाओं में निम्नानुसार शब्द प्रमुखता किसे जाते हैं -

संरक्षित → आर्द्ध

लॉटन → Ignis

स्लोवानिक → Ogni

- आर्द्ध देवता की उपरियाति निम्नानुसार नीनों लोकों में मानी जाती है। यथा -

(i) 'पृथ्वी लोक' में → आर्द्ध

(ii) 'अंतरिक्ष लोक' में → तटित् (विजली)

(iii) 'द्यु लोक' में → द्युभि

- आर्द्ध के प्रमुखतः तीन घण्टार माने जाते हैं। यथा -

(i) गार्हिपत्य आर्द्ध → पृथ्वीत्तिक पर आर्द्ध

Teacher's Signature.....

आपां नेता → इन्द्र  
 आपां नेपो → आग्नि

111



(ii), आहवनीय आग्नि → अंतरिक्ष लोक में 'तटित'

(iii) हाक्षिणीत्य आग्नि → द्यु लोक में 'सूर्य'

→ शुभनिश्चाषा के 'अवेस्ता' नामक ग्रन्थ में 'आग्नि' देवता को 'अपां नेपो' अर्थात् 'पानी की लाने वाला' देवता बतलाया गया है।

→ कुछ अन्य ग्रन्थों में आग्नि देवता के लिए 'अपां नपात', विशेषण शब्द को प्रयोग की जिया गया है। (जिसके शालिक का अर्थ होता है - 'जल का पूजा')

→ शहर्षवेद के विविध सूक्तों में 'आग्नि' देवता के लिए निश्चन्द्रुसर अनेक विशेषण शब्द पाप्त होते हैं -

उपा - (i), कविकृतुः → भूत और भवित्व को जानने वाला।

(ii) जातवेदस् → समर्त रहनेवाली की जानने वाला।

(iii), विश्ववेदस् → समर्त पढ़ायी की जानने वाला।

(iv), घृतपूष्टुः → पी की पीठ वाला।

(v), शौचिष्ठकेशः → शौचालाका के बालों वाला।

(vi), रुद्रमद्वन्त → सोने के जैसे हाँतो वाला।

(vii), यविद्वृप → सदा शुवा रहने वाला।

(viii), मैद्य → सदा पक्षा रहने वाला।

(ix), वैश्वानर → सभी मनुष्यों का चैता।

(x), रक्तश्चमुञ्चु → लाल हाथी-मुँझ वाला।

'आग्नेश्चक्षुक्त के मंत्र'

1. " अग्निभीष्मे पुरीहितं यज्ञस्य देवमृतिवेजम् ।  
होतारं रत्नधातमम् ॥ "

→ अस्तुत मंत्र में आग्नि का आहवान करते हुए एक विश्वामित्र कह रहे हैं कि जो यज्ञ के यजमान की कामनाओं की पूर्ति करने वाला है, ~~किम् युग्मी~~ जो दूषित हो सकत है, ज्ञातिविज है, होता है एवम् अनेक

पुकार की रत्न घाटुओं के धारण करने वाला है, और  
अग्नि देवता की में विश्वामित्र स्तुति करता है।  
नोट - 'उ' वर्ग के दिक्ष संस्कृत में प्रथमत होने वाला वर्ण है।  
'उ' वर्ग के दोनों तरफ सबर छवि आ रही है तो वह  
पर वैदिक संस्कृत में 'उ' इवानि का उच्चारण 'क'  
के रूप में कर दिया जाता है।

2. "अग्निः पूर्वाभिर्भविभिरित्यो नृतनैरुत  
स देवो एह वक्षति ॥"  
(मा+इह)

→ अग्नि का आह्वान करते हुए अग्नि विश्वामित्र आगे कहते हैं कि इस अग्नि देवता की प्राचीन ऋषियों (भृगु, अंगिरा) के द्वारा भी स्तुति की जाती थी और इब से भी ज्ञात आदि) के द्वारा भी स्तुति की जाती है, क्योंकि वह अग्नि देवता ही इन सभी देवताओं को हमारे इस यज्ञ में लेकर के आता है।

3. "अग्निना रथिमश्नवत पौष्ट्रेव दिविदिवे ।  
यशस्य वीरवत्तमम् ॥"

→ अग्नि विश्वामित्र आगे कहते हैं कि इस अग्नि देवता के द्वारा ही मनुष्यों के अधिक यजमान को प्रतिदिन ईश्वर (धन-दोलन आदि), पौष्ट्र-योग्य पदार्थ, यश या कीर्ति तथा वीरता से सुकृत पुत्र आदि उपान किये जाते हैं।

4. "अग्ने यं यजमात्वरं विश्वतः परिभूरस्या ।  
स इदं देवेषु चात्प्रति ॥"

→ प्रथम मंडा में अग्नि देवता को एक संदेशभारत के १६५ मानसे हुए अग्नि विश्वामित्र कहते हैं जिसे अग्निदेव

Teacher's Signature.....



हिंसा र्हे रहेत हमारे इस यज्ञ में जिन समूहों  
पदार्थों की आप प्राप्त करते हुए सन्दर्भ पढ़ाया  
आप यहाँ से अन्य देवताओं तक भी ले कर चलो  
जाते हैं अर्थात् आगे देव ही हमारी प्राप्तियाँ  
को अन्य देवताओं तक पहुँचाता है

5. “अग्निहोत्रा कविकृतुः सत्यरित्यग्रामवस्तमः ।

देवो देवेभिरभगमत् ॥”

→ अधिष्ठि विश्वामित्र आगे कहते हुए कि वह अग्नि देवता  
यज्ञ का होता है, अब आगे अविष्य का जानने वाला  
है, जिससे रहेत हुए रथा विविध प्रकार की  
क्रिया से फुकते हैं। वह आगे देवता ही अन्य  
देवताओं को साथ ले कर हमारे इस यज्ञ में पुणः  
आ जाता है।

6. “यद्गङ्गा हाश्चषे त्वमर्णे भद्रं करिष्यसि ।

तवत्तसत्यमङ्गरः ॥”

→ आगे का आश्वान करते हुए ब्रह्मि विश्वामित्र आगे  
कहते हैं कि हे आगे देव आप हमें जो कुछ भी  
पदार्थ प्रदान करोगे, वह हमारे लिए कल्पाणी का  
ही होगा।

हे गङ्गा तुम्हारी आगे देव अथवा अंगीरा मुद्रिकों  
जन्म देने वाला नाम निश्चित रूप से सत्य ही है।

7. “उप त्वाग्ने दिवकृषि दोषावस्तथिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥”

→ ब्रह्मि विश्वामित्र आगे को सम्बोधित करते हुए आगे  
कहते हुए कि हे आगे देव। हम सब अद्विग्न एवं  
यजमान हमात्र हमारी चेतु बुद्धि से पुरिष्ठेन एवं

Tanishka Singhania.....



दिन-रात आपको नमस्कार करते हुए आपके सभी पूछूँच  
जाना चाहते हैं, अर्थात् आपसे हम कसे अब में आने  
का जात्वान करते हैं।

8. “राजन्तमहवराणां गोपामृतरूप दीदिवम् ।  
वर्धमानं स्वे दमे ॥”

→ अग्नि देवता के समीप की कामना करते हुए विश्वामित्र  
आगे कहते हैं कि जो स्वयं प्रकाशित होने वाला है, हिंसा  
से रहित यज्ञों की रक्षा करने वाला है तथा सत्यरूपी कर्म  
प्रयोगों के बार-बार प्रकाशित करने वाला है एवम्  
अपने ही घर में वृद्धि के पात्र करने वाला है। (उसे  
अग्नि देवता के समीप इस पूछूँच जाना चाहते हैं)

9. “स नः पितैव सुन्वते अग्ने सुपायनो भव ।  
सचस्वानः स्वस्त्रये ॥”

→ अग्नि सूक्त के इस आन्तिम मंत्र में अपने लिए एवम् अन्य  
स्त्रियों के लिए आशीर्वाद की कामना करते हुए विश्वामित्र  
कहते हैं कि है अग्नि देव। जिस प्रकार एक  
पिता अपने पुत्र के लिए कल्याणकारी होता है, उसी  
प्रकृतर आप भी हमारे लिए कल्याणकारी बने तथा  
हमारे कल्याण के लिए सदैव हमारे साथ रहें।

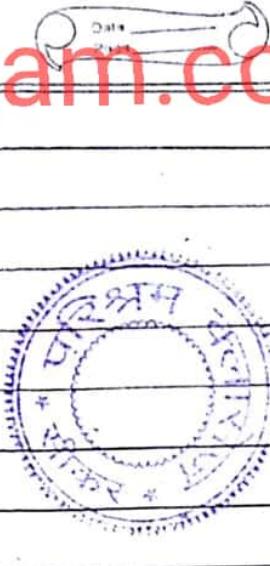
[www.missiongovtexam.com](http://www.missiongovtexam.com)



## 4. 'विष्णु सूक्त'

115.

[www.missiongovtexam.com](http://www.missiongovtexam.com)



वेद	→ श्रद्धवेद
मंडल क्रमांक	→ वैद्यम्
सूक्त क्रमांक	→ 154 वाँ
शब्दार्थि	→ दीर्घतमा
देवता	→ विष्णु
कुल मंत्र	→ 06
षष्ठ्यन्त	→ निष्ठुप

अन्य विशेष रूप →

- (i) 'विष्णु' शब्द मूलतः 'विष्वलू व्याप्ते', अस्तु एव  
बना है, जिसका शालिक अर्थ होता है - संवर्ग  
व्याप्त रहने वाला। अर्थात् जो सभी जगत्  
कीला हुआ है, वही विष्णु कहलाता है।
- (ii) शब्दों से 'विष्णु' को 'परम पद का अधिकारी'  
माना गया है।
- (iii) युराणी में विष्णु लोक को 'गो लोक' के नाम  
से भी पुकारा गया है।
- (iv) ऋद्धवेद में विष्णु के लिए भिन्नालुसार अनेक  
विशेषणों का प्रयोग हुआ है। -
- (v) 'उरुगाय' → अनुक लोगों के द्वारा इसी किया  
जाने वाला। ~~अथवा~~

अनेक देशों में गमन करने वाला।  
नोट → सम्पूर्ण श्रद्धवेद में विष्णु के लिए 'उरुगाय'  
शब्द का प्रयोग कुल 121 बार किया गया है।

(2) '४६ क्रम' → महान् पेराक्रमशाली।  
(3) 'त्रिविक्रम' → तीनों लोकों में अपनी किरणों को  
पैलाने वाला।

(4) 'वृष्णी' → कामनाओं की पूर्ति करने वाला।

(5) 'उपेन्द्र' → इन्द्र का द्वीपा भाई।

Teacher's Signature .....

# ‘विष्णु सूक्त के मंत्र’ →

1. “विष्णोर्नु कं वीर्याणि पूर्वोचं,  
यः पार्थिवानि विममे रजासि ।  
यो अस्त्वभाग्यदुत्तरं सधरुणा,  
विष्णकमाणस्त्रैष्ट्रीरुगायः ॥”

→ एस्त्वदुत्तर मंत्र में अन्य शब्दिगाणों की सम्बोधित करते हुए श्रद्धिविदीर्घतमा कहते हैं कि जिसने पूर्वी से सम्बन्धित रजः कठों अर्धात् ‘अविन, वायु, सूर्य, इत्यादि की विशेष रूप से स्वना की है, जिसने रूपी जैसे उत्त्वरुद्धाने को आधार रूप पदान किया है, जिसने अपनी तीन कदमों से तीनों लोकों को लाँघ लिया है तथा जो अनेक लोगों के द्वारा सूक्ति किया जाने वाला है, उसे भगवान् विष्णु के वीरतापूर्व कार्यों के बोरे में मैं आपका अतिश्चिह्न बतलाऊ हूँ।

2. “ए तदविष्णुः स्तवते वीर्याणा-  
मृगो नृ भीमः कुपरो गिरिष्ठाः ।  
यस्यासुषु त्रिषु विकम्भात्व-

धिष्ठीयन्ति भुवनानि विश्वा ॥”

→ विष्णु की विशेषताओं का वर्णन करते हुए श्रद्धालि दीर्घतमा आगे कहते हैं कि जिसके विशाल तीनों कदमों में समरूप लोक समाहित हो जाते हैं या विवास करते हैं, उसने विष्णु के वीरतापूर्व कार्यों की उसी प्रकार सूक्ति की जाती है, जिस प्रकार शेर, चीत, आदि हिंसक जानवरों की सूक्ति की जाती है अथवा उच्च पर्वतीय पदरों में रहने वाले भूमध्यानक या कुर्लिंग (दुष्ट) लोगों की सूक्ति की जाती है।

3. “प विष्णवे शूषमेतु मन्म,  
गिरिहिते उरुगायाय वृष्टा।

य इहं दीर्घं प्रयतं सधर्थ-

मैको विमै विभिरित्पदेषि : ॥”

→ श्रद्धिष्ठ दीर्घितमा आओ कहते हैं कि जिसने अकेले  
बे ही दृश्यने विशाल तीन कदमों से नियमों में बँधी  
हुए इस विशाल ऊँच ऊँच लोक की विशेष रूप से  
रूपना की है। हमारी वासियों में निवास करने वाले,  
अनेक लोगों के द्वारा रुक्ति लिये जाने वाले, तभी  
की कामनाओं की पूर्ति करने वाले एवं सर्वेष व्याप्त  
रहने वाले उस विष्णु के लिए ही मेरा यह शारीरिक  
बल प्राप्त हो जावै। अक्षिति में सदैव उस विष्णु  
की ही रुक्ति करता रहूँ।

4. “यस्य श्री पूर्ण मधुना पदान्य-

शीयमाता रुद्धया मदान्य ।

य उ विधातु पृथिवीभूत धाम,

एको दाधार भुवनानि विश्वा ॥”

→ श्रद्धिष्ठ दीर्घितमा आओ कहते हैं कि जिसके द्विष्य  
अभूत रहे मेरे हुए तीनों कदम कक्षी क्षीण। नष्ट  
न होते हुए सदैव अन्न, जल आदि के द्वारा  
प्रसन्नता की प्राप्त करते हैं। जो तीन पक्षुर  
की घातुओं अक्षिति पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष लोक  
एवं द्यु लोक की रूपना करने वाला है रूपा  
जो अंकेला ही समरूप लोकों को धरण करने  
वाला है। (उस विष्णु की में सदैव रुक्ति  
करता रहूँ।)



5. “तदस्य प्रियमभि पाषो अश्यां  
नरो यज देवमधो मदन्ति ।

उसके मरण से हि बन्धुरित्या,

विद्वाः पैद परमे मध्य उत्सः ॥”

→ प्रस्तुत मंज में व्यपने लिए रथगीलीक प्राप्ति की कामना  
करते हुए वैद्यषि दीर्घतमा छहों हैं कि जहाँ पर मनुष्य  
भी देवस्वरूप होकर के पुस्तनता पूर्वक रहते हैं जो सभी  
का बन्धु हैं। महान् पराक्रम शाली उस विद्वान् के  
परम धाम में सदैव आमृत का भरना बहुत रहता है।  
अतः भी विद्वान् को प्रिय उस मार्ग में (परम धाम में)  
पहुँच जाऊँ। (ऐसा आशीर्वदि मुझे पदान करें।)

6. “ता वां वास्तुपुष्टमसि गमद्यै,  
यत्र गावो भूरिष्टङ्गाऽयासः ।

अत्राह तदुर्गायस्य वृष्णः;

परमं पदमवभाति भूरि ॥”

→ विद्वान् स्वकृत के इस आन्तिम मंज में यजमान दम्पति के लिए  
रथगी प्राप्ति की कामना करते हुए वैद्यषि दीर्घतमा छहों  
हैं कि जहाँ पर बड़े-बड़े सींगो वाली गायें विवास रहती हैं,  
अनेक ल्लोगों के द्वारा रखति किये जाने वाले एवं सभी  
की कामनाओं की पूर्ति करने वाले भगवान् विद्वान् का वह  
परम धाम सदैव प्रकाशित होता रहता है। अतः द्वू  
दोनों पति-पत्नी भी मृत्यु की प्राप्ति उन्हीं लोगों  
को अर्थात् विद्वान् के परम धाम की प्राप्त हो जाओ।





वेद	→ ऋग्वेद
मंडल क्रमांक	→ पृथम
भूक्त क्रमांक	→ 25वाँ
ऋषि	→ वृन्दःशोप
देवता	→ वरुण
कुल मंत्र	→ 21
धान्द	→ गायत्री

### अन्य विशेष वृत्ति →

- मैट्टॉनल 'वास्तु' के अनुसार 'वरुण' शब्द 'वृ' धातु में 'उनन्' स्थिति के जुड़ने से बना है जिसका शालिक अर्थ होता है - 'आप्त्वा दित करना' या 'आप्त्वं करना'। अर्थात् जिसमें सभी पदार्थों को आप्त्वा दित कर रखा है, वही वरुण कहलाता है।
- ऋग्वेद में कुल १२० सूक्तों में वरुण देवता की स्तुति की छाई है।
- ऋग्वेद में वरुण देवता को 'वास्तु' या 'राजा' के रूप में माना गया है। अर्थात् वह सभुओं विश्व का सभ्यात् है एवं सभी पर शासन करता है।
- ऋग्वेद में वरुण देवता को 'रात्रि' एवं 'दिन' का अधिकारी भी माना गया है।
- सूर्य को वरुण देवता को 'निन्दा', माना गया है।
- ऋग्वेद में वरुण देवता के लिए 'धूतवत्' शब्द का उपयोग भी किया गया है। जिसका शालिक अर्थ होता है - 'संसार के नियमों से संबलित करने के बह धारण करने वाला'
- सूर्यों में वरुण देवता को 'जल का देवता' भी माना गया है। परन्तु ऋग्वेद में ऐसा कोई उल्लेखन्य मिलता

→ यूनानी भाषा के 'अवेस्ता' मन्त्र में वरुण देवता के लिए 'अद्वैरमज्जद' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका इस्तिक्ष अर्थ होता है - 'सभी प्राणियों में प्राण शक्ति का संचार करने वाला ।'

### 'वरुण सूक्त के मंत्र'

1. "यन्मिहि ते विशो यथा प्रदेव वरुण ब्रह्म ।  
रमीमानि धवियवि ।"

→ प्रस्तुत मंत्र में वरुण देवता से क्षमा या दया की कामना करते हुए ब्रह्मिष्ठ शुनःशीप कहते हैं कि है वरुण देवता ! जिस अकार सामान्य प्रजा किसी उष्टुप से परिदृश्य अपने नियमों में आलरूप कर जाती है (फिर भी आप उसे क्षमा कर देते हैं उसी प्रकार यदि मुझसे भी आपके कार्यों में कोई आलरूप दें जाये तो मुझे क्षमा करने की हूँपा करें ।)

2. "मा नो वधाय हन्त्वे जिहिक्लानस्य रीरधः ।  
मा हणानस्य मन्यवे ॥"

→ प्रस्तुत मंत्र में भी वरुण देव से क्षमा याचना करते हुए ब्रह्मिष्ठ शुनःशीप कहते हैं कि अनादर या अपमान करने वालों का वध करने के लिए सदैव तथार रहने वाले आप हम ब्रह्मिष्ठों का वध का विषय न बनायें । अर्थात् हमें मूल्य रेखाओं पर तथा अत्यधिक कोष्ठ करने वाले आप हम ब्रह्मिष्ठों को कोष्ठ का विषय भी न बनायें अर्थात् हम पर कोष्ठ न करें ।

3. "वि मृदीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् ।  
शीर्भिर्वरुणा सीमहि ॥"

→ वरुण देवता को सम्बोधित करते हुए ब्रह्मिष्ठ शुनःशीप कहते हैं कि है वरुण देव (जिस प्रकार एक स्थी दुर्घटने से धक्के हुए अपने

Teacher's Signature.....

द्योढ़ि को धारा-पुस आदि उल्लङ्घन करता है,  
उसी उकार हम सभी क्रमिगण भी आपके प्रसन्न  
करने के लिए हमारी रुद्धियों के द्वारा उल्लङ्घन करते  
का उत्थान कर रहे हैं। अतः आप हमारी रुद्धियों  
के लब्धिकार करें।

4. “परा हि मे विमन्यवः तपान्ति वरय इष्टये ।

वयो न वसतील्पु ॥”

→ श्रद्धिष्ठुनः शोप आगे कहते हैं कि हे वरुण देव! जिस  
त्रिकार सन्दधा के समय पक्षी अपने द्योंगलों में बापल  
आ जाते हैं, उसी प्रकार रम्पति की इष्टका करने वाली  
मेरी ये क्रीधरवित् रुद्धियों की आपका ध्यान करके  
बापदं रुद्धिति में लग जाती हैं।

5. “कदा क्षत्राद्यियं नरमा वरुणं करामहे ।

‘बृक्षीकायौरुपद्मसम् ॥’

→ श्रद्धिष्ठुनः शोप आगे कहते हैं कि जो शासकीय वासी  
से युक्त हैं, सभी का नीतृत्व करने वाला है वहाँ  
सभी को एक नजर से देखने वाला है, उस वरुण  
देवता को उल्लङ्घन करने के लिए क्षम क्षम वृल्लिये?  
अर्थात् वह वरुण देव उल्लङ्घन द्वारा हमारे यज्ञ में  
कष्ट आएंगे ।

6. “तदित्तमानमाशात् वैनन्ता न प्रयुक्ततः ।

‘धूतव्रताय दाशुषे ॥’

→ श्रद्धिष्ठुनः शोप आगे कहते हैं कि हे वरुण देव! इसनं  
यज्ञ में हमारे द्वारा जो कुछ भी समर्पित किया जाता  
है, उन सब पदार्थों को आप और मिश्र देवता समान  
रूप से लब्धिकार करते हैं। अतः ये नियमों का पालन

करने वाले वरुण देव आप हमें कब दर्शन देंगे।



7. “वैदा यो वीनां पद्मनल्लिक्षणं पतताम् ।

वेद नावः समुद्रियः ॥”

→ इस्तुत मंत्र में वरुण के वर्ता की सभी पर नजर रखने वाला मानते हुए अधिष्ठित शुनः शीप कहते हैं कि वह वरुण देव अंतरिक्ष मार्ग रेखे गुजरने वाले पक्षियों के मार्ग की भी जानता है तथा समुद्र से ने गुजरने वाले नाव आदि के मार्ग की भी जानता है अथात् वह सभी पर नजर रखने वाला है।

8. “वैद मासो धूतवतो द्वादशा प्रजावतः ।

वैदा य उपजायते ॥”

→ अधिष्ठित शुनः शीप आगे कहते हैं कि नियमों का पालन करने वाला वह वरुण देव अपनी पुजा से सम्बन्धित सभी वारह महीनों (चैत्र, वैशाख आदि) के बारे में जानता है तथा दरकीन वर्ष के बाद जो एक अधिक सारम उत्पन्न हो जाता है उसके बारे में भी बहु जानता है।

9. “वैद वातस्य वर्तनिमुरो वैष्टिवस्य लृतः ।

वैदा ये अद्यास्ते ॥”

→ वरुण की विशेषताओं का वर्णन करते हुए अधिष्ठित शुनः शीप आगे कहते हैं जो अत्यधिक विस्तीर्ण या क्षापक है, अत्यधिक दर्शनीय है एवं महान् शुणों से युक्त है ऐसा वह वरुण देव वायु के मार्ग की भी जानता है तथा उच्च रक्षान पर अधिकृत अन्य देवताओं की भी जानता है।

10. “नि षषाद् धूतवतो वरुणः परस्यास्वा ।

सामाज्याय लुक्तुः ॥”

→ अधिष्ठित शुनः शीप आगे कहते हैं कि अपने द्वारा स्वीकृत

नियमों का पालन करने वाला एवं औष्ठ कर्म करने  
वाला वह वरुण देवता साम्राज्य के लिए अपनी समस्त  
दिल्ली प्रजाओं में अधिकृत हुआ है या समाचार हुआ है।

11. “अतो विश्वान्यदभुता विकिर्वा अधि पश्यति ।  
कृतानि या च कर्वा ॥”

→ श्रद्धिशुनः शोप आगे कहते हैं कि उस वरुण देव की  
कृपा से ही लानी मनुष्य समस्त प्रकार के अद्भुत पदार्थों  
को (आश्वस्य उत्पन्न करने वाले पदार्थों को) देखता है।  
जो आश्वस्य पदार्थ व्यक्ति के घटवा जो भविष्य  
में घटित होने वाले हैं उन सभी को वे देखते हैं।

12. “स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुप्ता करत् ।  
प्र न जायुषि तारिष्यत् ॥”

→ श्रद्धिशुनः शोप आगे कहते हैं कि औष्ठ कर्म करने वाला  
वह अदिति का मुख वरुण देवता हम सभी श्रद्धियों के  
प्रतिक्रिया सुमारी पर ले जाये रहा हमारी आयु में भी  
बढ़ि दे रहे। (ऐसी हम उससे कामना करते हैं।)

13. “बिभूद् द्वाषिं हिरण्यं वरुणो वस्त निर्विनम् ।  
परि संशो नि छेदिरे ॥”

→ वरुण की विशेषताओं का वर्णन करते हुए श्रद्धिशुनः शोप  
आगे कहते हैं कि सौने के कवच को धारण करता हुआ  
वह वरुण देवता अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर के उसी कवच  
से ढक ले रहा है तथा उसकी घमकदार किरणों द्वारा  
ओर फैली हुई है।

14. “न यं द्विसन्ति द्विष्यनो द्वुहवाणो जनानाम् ।  
न देव भविमात्यः ॥”

→ अधिष्ठानः शोप आगे कहते हैं कि उस वरुण देवता को देखकर धन्वा उस वरुण देवता की कृपा से हिंसा करने की इच्छा करने वाले मनुष्य अपने हिंसक कर्त्त्वों को छोड़ देते हैं। अन्य लोगों के प्रति दोह करने वाले मनुष्य अपनी दोह भावना को छोड़ देते हैं तथा पापकर्म करने वाले मनुष्य अपने पापकर्मों को छोड़ देते हैं।

15. “उत यो मानुषेऽवा धशश्चक्ते असाम्या ।

असमाक्तमुद्देश्या ॥”

→ अधिष्ठानः शोप आगे कहते हैं कि वह वरुण देवता ही मनुष्यों के लिए - आवश्यक समस्त अन्ज अदि पदार्थों को समूर्झ राष्ट्र में उत्पन्न करता है। तथा उस अन्ज की ग्राहण करने के बाद हमारे पैटों में उसे पचाने की शक्ति भी वही उत्पन्न करता है।

16. “परा मे यन्ति धीरये गावो न गत्पूतीरनु ।

इत्यन्तीरुपहासम् ॥”

→ वरुण देवता आगे कहते हैं कि अत्यधिक दर्शक उस वरुण देवता को देखने की इच्छा करती हुई मेरी ये बुद्धियाँ धन्वा भावना के उनकी ओर उसी प्रकार खीचीं चली जाती हैं। जिस प्रकार शाम के समय गाये अपने गोष्ठीों की ओर खीचीं चली जाती हैं।

17. “सं तु वेत्यावै पुनर्यतो में मध्वाभूतम् ।

होते व सदसे प्रियम् ॥”

→ अधिष्ठानः शोप वरुण देवता को सम्बोधित करते हुए आगे कहते हैं कि हे वरुण देवता! हमारे इस अन्यः सब यज्ञ में मेरी समझत दिव्य आङ्गूष्ठियाँ (6 बिं) आपके लिए ही सम्पादित ही गड़ि हैं तथा आप भी इक्कीता की तरह अपनी छाँटियाँ आङ्गूष्ठियाँ की ग्राहण कर लें हैं। अतः आप हमें यह आशीर्वद प्रदान करें। हम परत्यर मध्वुरता से बचें करते हैं। मा मध्वुरवाणी बोलते हैं।

18. “दर्शन्तु विश्वदश्तिं दर्शन्यमधिक्षमि ।

एता जुषत मे गिरः ॥”

Teacher's Signature .....

→ ऋषि शुनः शेष आगे कहते हैं कि जो वरुण देवता सम्पूर्ण विश्व में देखने के लिये है उनको आज मैंने निरक्षित ठहर से देखा लिया है। पूर्वी पर उनके रथ की भी मैंने देखा लिया है। इस प्रकार उस वरुण के काम में मेरी इन खुलियों की गुणा या स्वीकार कर लिया है।

19. “इमं मैं वरुणं झुधी दृवमद्याच मृक्य ।  
त्वामवरसुरा चक्र ॥”

→ प्रस्तुत मंत्र में वरुण से आने का आवाहन करते हुए ऋषि शुनः शेष कहते हैं कि हे वरुण देवता! आप मेरे इस आवाहन के लिये तथा आज अपने दशभिन्न देवताओं के देवता देकर मुझे खुखी कीजिए। आपके दशभिन्नों से दरकार का समिलाधी मैं शुनः शेष घार-घार आपको छुड़ाऊँ।

20. “त्वं विश्वरस्य मेधिर दिवश्च ग्रहश्च राजसि ।  
स यामनि प्रतिष्ठिष्ठि ॥”

→ ऋषि शुनः शेष आगे कहते हैं कि ही मेधावी वरुण देवता! तुम ही द्युलीक में, पूर्वी लोक में एवं समरत्त लोकों में प्रकाशित हो रहे हो अर्थात् सभी जगत् आपकी ही किट्ठों के लिए हुई हों। अतः मेरे जीवनमार्ग में भी वह वरुण देव ही सहायक होगा। इसका मुख्य प्रभुत्व देव है। अर्थात् तुम सुझे जीवन मार्ग से मुक्ति प्रदान करो।

21. “उद्गतमं मुमुक्षिणो विपाशं मध्यमं चूत ।  
अबाधमानि जीवसे ॥”

→ वरुण सूक्त के इस अन्तिम मंत्र में समरत्त प्रकार के बंधनों से छुटकारा प्राप्त करने के बंधनों से छुटकारा प्राप्त करने हेतु ऋषि शुनः शेष कहते हैं कि हे वरुण देवता! हमारे उपर के भाग में समाप्त बंधनों की आप उखाड़ कर पैकरो। मध्य माग के समरत्त बंधनों की भी नस्त तरीकों दो तथा खुखी जीवन के लिए अधो भाग के समरत्त बंधनों की भी नस्त करो।